महाकवि कालिदास एवं तुलसीदास के काव्य में श्रृंगार रस के सौन्दर्य का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 प्रभात रंजन,
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
संत गुरू घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला– धमतरी (छ.ग.)
Email: mail2drpranjan@gmail.com

सारांश

महाकवि कालिदास संस्कृत मध्यकाल के श्रेष्ठतम कवि हैं तो तुलसीदास हिन्दी मध्यकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि। दोनों का साहित्य रस से ओत–प्रोत है। श्रृंगार का रस राजत्व सर्वविदित है और इसी श्रृंगार के आलोक में दोनों कवियों के श्रृंगार रस के सौन्दर्य का तुलनात्मक अध्ययन इस शोध आलेख का ध्येय है। कालिदास के काव्य का अंगी यदि दाम्पत्य रति है तो तुलसी का भगवत विषयक रति। कालिदास का श्रृंगार सौन्दर्य जहाँ उद्यमि रूप में आया है वहीं तुलसी श्रृंगार में पूर्ण रूप से मर्यादित है। कालिदास की कृतियों पर वात्स्यायन का प्रभाव दिखता है परंतु तुलसी सात्विकता को महत्व देते है। यद्यपि दोनों की रचनाओं में काफी श्रृंगार साम्य है तो वैषम्य भी है।महाकवि कालिदास का प्रभाव भी तुलसीदास पर है। कुल मिलाकर कालिदास का श्रृंगार हमें वासनात्मकता से जीवन की पूर्णता की ओर ले जाता है तो तुलसी का श्रृंगार कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।

मुख्य शब्द– *कालिदास, तुलसीदास।*

प्रस्तावना

भारतीय काव्य शास्त्र में काव्य की आत्मा के रूप में रस को स्वीकृत किया गया है। काव्य में जो कुछ आस्वाद्य है, मनमोहक है, सौन्दर्य की सृष्टि करने वाला है और जो हमारे हृदय में आनंद पैदा करता है वह रस है। तैत्तरीयोपनिषद कहता है– रसंहये वायं लध्वा आन्दोभवति।''[01] अर्थात रस आनंद की एक ऐसी संज्ञा है जिस पर रूककर जाना पड़ता है इस रस के बारे में राजशेखर ने लिखा है कि ''नन्दिकेश्वर''ने सर्वप्रथम ब्रम्हा जी के उपदेश से रस का निर्माण किया है।[1]'रसशास्त्र' पर भारत ने अपनी पुस्तक नाट्यशास्त्र में विचार करते हुए कहा– ''काव्य में रस ही सर्वोपरि चमत्कार आस्वादनीय पदार्थ है, रस के स्वरूप का ज्ञान और इसका आस्वाद्य ही काव्य के अध्ययन का सर्वोपरि फल है। [2] उनके सारगर्भित रस सूत्र ''विभाव अनुभाव व्याभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्ति'' के इर्द–गिर्द ही संपूर्ण रस चिन्तन घूमता रहा है। आचार्य 'मन्मट' इस पर अपनी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहते हैं

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणियानि च
रत्यादेः स्थायितो लोके तानि चेन्नाट्य काव्ययोः।
विभावानुभावस्त : कथ्यन्ते व्याभिचारिपः
व्यक्तः सतेविभावाछे स्थायी भावो रस स्मृतः।।[3]

''लोक व्यवहार में रति आदि स्थायी भावों या चित्तवृत्तियों के मनोविकारों के जो कारण कार्य और सहकारी कारण होते हैं वे ही नाटक और काव्य में उनके कारण कार्य और व्यवभिचारी भाव कहे जाते हैं तथा उन विभवादिकों के द्वारा स्थायी भाव इत्यादि व्यक्त होकर रस कहलाते हैं। भरत मुनि ने इन रसों की संख्या 8 मानी है– श्रृंगार, हास्य, करूणवीर, भयानक, रौद्र, वीभत्स और अद्‌भुत। अभिनव गुप्त ने भरत के श्लोक के परिवर्तित पाठ के आधार पर शांत को भी रस में शामिल किया। कुछ विद्वान भक्ति और वात्सल्य को भी रस मानते हैं। काव्य का सौन्दर्य का आनंद भावक इन्हीं रसों के माध्यम से करता है।

महाकवि कालिदास संस्कृत मध्यकाल के श्रेष्ठतम कवि हैं तथा महाकवि तुलसीदास हिन्दी मध्यकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि। दोनों के काव्यों में रस सौन्दर्य की स्रोतस्विनी प्रवाहित है। अपने काव्य में रस सौन्दर्य का सम्यक परिपाक करने के कारण ही भारत के कवियों में इनकी गणना श्रेष्ठतम कवि के रूप में की जाती है। यहां हम रसराज श्रृंगार के आलोक में दोनों कवियों के काव्य में रस के सौन्दर्य का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

सर्वप्रथम महाकवि कालिदास की रचनाओं को ध्यान रखते हुए उनके काव्यों में विभिन्न रसों और उसके सौन्दर्य का देखेंगे।

कालिदास के काव्य में श्रृंगार रस–राज के रूप में आया है। संस्कृत साहित्य के श्रृंगार व्यंजना में उनकी बराबरी का कोई कवि नहीं है। श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग के श्रृंगार के वे सिरमौर कवि हैं तथा करूण रस का विशेष आप्लायन इनके काव्य में मिलता है। डॉ. राधाकृष्णन ने इनके बारे में लिखा है– वे श्रृंगार के चित्रण में सिरमौर हैं वे करूणवीर अद्‌भुत और शांत रस का भी विशिष्ट प्रतिनिधित्व करते हैं।''[4] इसी तरह का मत के.एस.रा. स्वामी का भी है– ''[5]

कहना न होगा कि कालिदास ने श्रृंगार रस की मनमोहिनी प्रस्तुति अपने काव्य एवं नाटक ग्रंथों में की है। श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग दोनों के चित्रण में उनकी लेखनी सफल ही नहीं श्रेष्ठ रही है। नायक–नायिका के मिलन में संयोग और विरह में विप्रलंभ श्रृंगार आता है संयोग में भी शुद्ध सौन्दर्य केवल पत्नी विषयक होता है। अनूढ़ा (अदिवाहिता के प्रति होने वाली रति पूर्वराग के अंतर्गत आती है। 'कुमार संभवम्'के तीसरे सर्ग में शंकर पार्वती की तथा रघुवंश के छठे सर्ग की रति चेष्टायें इसी के अंतर्गत आती हैं। कुमारसंभवम का आठवॉ सर्ग तथा 'रघुवंश ' का 19 वॉं सर्ग संयोग श्रृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण है, तो उनकी रचना मेघदूत वियोग श्रृंगार का अद्वितीय उदाहरण है। मान का सर्वोत्कृष्ट वर्णन कुमार संभवम् के अष्टम सर्ग (147 से 524 इ0 तक) में हुआ है। उनकी प्रसिद्ध कृति 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में श्रृंगार अंगी रस के

रूप में है। दुष्यंत पहली ही मुलाकात में शकुंतला को देखकर आकृष्ट हो जाता है – ''अहो मधुर माशां दर्शनम्''[6] राजा शकुंतला के शरीर सौन्दर्य एवं सौष्ठव को देखकर कह उठता है'' कंधे पर बंधी गांठ से, दोनों स्तनों के विस्तार को ढंकने वाले वत्कल वस्त्र से इसका यह मनोहर शरीर पीले पत्र के मध्य भाग से ढंके पुष्प के समान अपनी शोभा को धारण नहीं कर रहा है। यद्यपि यह वत्कलवस्त्र पर्याप्त रूप से इसके शरीर के योग्य नहीं है फिर भी यह इसके अलंकार की शोभा उत्पन्न कर रहा है। उसके दैहिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए राजा दुष्यंत कह उठते हैं–

अधरः किसलय रागः कोमल विटपानुकारिणौ वाहू
कुसुमभिवं लोभनीयं यौवन मंड्गेषु सन्नद्यम्''[7]

उसके अधर कोमल किसलम के समान रक्तिम है वाहु कोमल शाखाओं के समान है तथा अंगों में पुष्प के समान यौवन व्याप्त है। श्रृंगार रस की पूर्ण उपस्थिति दुष्यंत शकुंतला के प्रथम मिलन से लेकर उसके गधर्व विवाह तक होता है। यहॉ श्रृंगार पूर्णरूपेण आया है। राजा दुष्यंत की स्वस्थ सुंदर आकृति तथा उसके मधुर वचनों को सुनकर शकुंतला के हृदय में भी प्रेम की अनुभूति होती है। वह शकुंतला से गधर्व विवाह का प्रस्ताव रखता है तथा उसके अन्दर रस का पान करना चाहता है। यहाँ संयोग है परंतु वही दुष्यंत शापवंश शकुंतला को भूल जाता है परंतु नाटक के अंतिम अंक में वह शकुंतला के प्रति अनजाने ऋषिशाप से किये गये पाप पर पश्चाताप करता है तथा शकुंतला के चरणों पर गिरकर क्षमा याचना करता है –

सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमपिमनसः संमोहो ते सदावलवान् भूत
प्रबलतमसामेवं प्रायाः शुभेषु हि वृत्तयः
स्रजमपि शिरश्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशकया''[8]

जिस तरह से ग्रहण के बाद चन्द्रमा और रोहिणी का मिलन होता है ठीक उसी प्रकार शकुंतला और दुष्यंत का मिलन होता है। यहाँ संयोग श्रृंगार का सौन्दर्य पूर्णता को प्राप्त करता है।

इसी तरह 'विक्रमोर्वरीयम् नाटक में विरह के बाद मिलन की सुरभित मंद हवा (पुरूखा और उर्वशी) दोनों के लिए अत्यंत सुखदाई होती है। लताओट से उर्वशी को देखकर पुरूरवा के मन में हर्षातिरेंक होता है उर्वशी भी उसे देखकर उसी प्रकार मोहित होती है वह इस प्रकार मुग्ध होती है कि लक्ष्मी स्वयंवर नाटक में अभिनय करते समय 'पुरूषोत्तम के बदले पुरूरवा बोल उठती है और स्वर्ग च्युत होकर पृथ्वी पर आकर गिरती है। वह शाप प्रेमी मन के लिए वरदान की तरह होती है।

इसी प्रकार 'मालविकाअग्निमित्र' नाटक में राजा अग्निमित्र और मालविका के संयोग श्रृंगार का मनोहारी चित्रण हुआ है। दोनों के संयोग के सौन्दर्य का, दोनों के रूप सौन्दर्य का प्रस्तुतिकरण अन्यत्र दुर्लभ है। एक चित्र द्रष्टव्य है– ''राजा कहता है कि हे विशाल नयनों वाली! मेरे प्राण तुम्हारी आशा पर टिके हुए है। मैं तुम पर कब से आसक्त हूँ मुझ पर कृपा करें। राजा

उसे गले लगाना चाहता है पर मालविका निकलकर भागना चाहती है। राजा मन ही मन सोचता है कि नवेलियों के प्रेम भरे नखरे कितने सुन्दर लगते है। वह कांपती कांपती अंगुलियों से तगड़ी खोलने में लगे मेरे दोनों हाथों को रोक देती है। जब मैं बलपूर्वक आलिंगन करता हूँ तो अपने दोनों हाथों से अपने स्तनों को ढंक लेती है। जब मैं सुंदर पलकों एवं आँखों वाली मुख को चूमने के लिए ऊपर उठना चाहता हूँ तो वह मुंह फेर लेती है। वह ना–ना करती है परंतु वह मुझे इच्छा पूर्ति का आनंद दे रही हैं –

हस्तं कम्पयते रूणद्धि रसना व्यापार लोलांगुलौः
स्वौ नयति स्तनावरणतामा लिंग्यमानावलात्।
पातुंपक्षमलनेत्र मुन्नमयतः साचीकरोत्यामनं साची कारोत्या मनः
व्याजेनायमिलाषपूरण सुखं निर्वर्त त्येव मे।।''[9]

कुमार संभवम् महाकाव्य में शिव पार्वती का जो श्रृंगार चित्रण अद्वितीय है तपस्या की आँच से ढलकर पार्वती शिव को वरण पतिरूप में वरन करती है। पार्वती के अनिद्य सौन्दर्य और तपस्वी शिव के तपस्या का सौन्दर्य जब मिलकर एकाकार होते है नववधू का श्रृंगार का उद्भूत श्रृंगारिक रूप चित्रण उपस्थित होता है। अंगरागऔर आभूषणों से सजी पार्वती की स्वाभाविक सुंदरता का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते है यह सुंदरता किसके लिए वर्णन द्रष्टव्य है –

आत्मान मालोक्य च शोभमानमादर्श बिम्बे स्तिमितायताक्षी।
हरोपयाने त्वरिता वभूव स्त्रीणां प्रियालोक फलोहि वेशः।। ''[10]

रघुवंश में बसंत ऋतु की मादकता और कोयल की बूक और स्त्रियों की स्थिति का एक उत्कृष्ट श्रृंगारिक वर्णन प्रस्तुत है –

त्यज्यं मालमलंवत विग्रेहन पुनरेति मतंचतुरंवयं
पर मृताभृतिरीव निवेदिते स्करमतेरमते रूप वधूनः।''[11]

उन दिनों कोयल की कूक मानो कामदेव का यह आदेश सुना रही हो कि अरी स्त्रियों। रूठना छोड़ दो, लड़ाई झगड़ा बन्द कर दो क्योंकि बीता हुआ यौवन फिर वापस नहीं आता। यह सुनकर सभी स्त्रियां अपने–अपने पतियों के साथ रमण करने में जा जुटी।'' इसी काव्य के 19 वें सर्ग में राजा अग्निवर्णका रनिवास की स्त्रियों के साथ संयोग श्रृंगार सौन्दर्य का अदभूत वर्णन करते हुए कालिदास लिखते है जब कभी उसके (अग्निवर्ण) के साथ बहुत देर तक संयोग करने के कारण स्त्रियों अलसा जाती है तब वे अपने मोटे मोटे स्तनों से राजा की छाती के चंदन को पोछती हुई उसके वक्षस्थल पर इस प्रकार सो जाती है मानों वे संभोग का कंठ सूत्र नामक आसन साध रही हो। जिसमें स्त्रियां अपने पति के ऊपर सोकर अपने स्तनों से धीरे–धीरे अपने प्रिय की छाती को धामते हुए कसकर छाती से लिपट जाती है।''[12]

श्रृंगार वियोग के बिना अपूर्ण है। सुख और दुःख की तरह संयोग और वियोग की अवस्थायें प्रत्येक के जीवन में आती है। कालिदास की रचनाएँ वियोग श्रृंगार से अटी पड़ी है– 'विक्रमोंर्वर्शीयम' नाटक में उर्वशी के अकस्मात बिछोह हो जाने पर राजा पुरूखा की विरह दशा

देखने योग्य है वह कहता है– ''ये आँखे अब व्यर्थ है राजा की विरह व्यथा को रानी धारिणी समझ जाती है और कुपित होती है राजा वास्तविक स्थिति को छिपाने का असफल प्रयास करते हुए उसकी चिरौरी करते हुए उनके पैरों पर गिर पड़ते है पर रानी उसकी उपेक्षा कर चल देती है।

अपराधी नामहं प्रसीदरम्भोरूसंरम्भात।
सेव्या नश्च कुपितः कथं नुदासो निरपराधः।।''[13]

'अभिज्ञान शाकुंतलम्' में राजा दुष्यंत द्वारा शकुंतला को न स्वीकार किये जाने पर शकुंतला का विलाप और विरहजन्य चीत्कार–'भगवती वसुधे। देहि में विवरमं।' रघुवंश में इन्दुमती को मृत्युपश्चात राजा का विलाप विरह की तीव्रता को दिखाता है। कालिदास का मेघदूत तो विरह का काव्य ही हैं संपूर्ण मेघदूत यक्ष के विरह का ही तो गायन है। अलकापुरी का शापित यक्ष अपनी प्रेमिका से काफी दूर चला आया है। वह एक निश्चित अवधि तक अपनी प्रियतमा से नहीं मिल सकता। उसका हृदय प्रिया के विछोह में क्रंदन करता है वह रामगिरि से अपनी प्रिया को प्रकृति वे माध्यम से संदेश भेजता है और अपनी प्रियतमा को ढ़ाढ़स बंधाता है –

शापांतो में भुजगशय नादुस्थिते शारंगपाणौ
शेषान्मासान्गमय चतुरोसोचने मीलयित्वा।
पश्चादावां विरह गणितंतमात्मा भिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरचन्द्रिकासु क्षपासु।। ''[14]

'मालविकाग्निमित्र' नाटक में मालविका को देखने के बाद उससे मिलन की उत्कंठा में विरह का उत्कृष्ट चित्रण किया गया है मालविका कहती है जिस प्रियतम के बड़े मन को थाह नहीं ले पा रही हूँ उससे प्यार करके मुझे अपने ऊपर लाज आ रही है अपनी प्यारी सखियों से भी यह बात खुलकर नहीं कह पा रही हूँ। प्रेम की पीड़ा कब तक कामदेव मुझे देता रहेगा और इधर अग्निमित्र की दशा देखिये– भगवान कामदेव पग–पग पर बाधाओं से भरे हुए कामों में मुझे फंसाकर तुम मुझ पर ऐसी चोटे क्यों किए जा रहे हो। कहाँ एक ओर ढाढ़स बंधाने वाला तुम्हारा कोमल फूलों का धनुष और कहाँ यह हृदय को मथ डालने वाला प्रेम का रोग। जो बाहर से जितने कोमल दीखते हैं वे उतने कठोर होते हैं।

ऊपर के विवेचन मे हम पाते है कि कालिदास का संयोग श्रृंगार वर्णन अपूर्व है, परंतु वियोग में उनकी वृत्ति कम ही है।

अब हम महाकवि तुलसीदास के काव्य में श्रृंगार रस के सौन्दर्य पर प्रकाश डालेंगे। तुलसी में काव्य में श्रृंगार रस काफी मर्यादित रूप में सामने आया है किन्तु श्रृंगार रस की प्रांजलता इसमें बनी हुई है। तुलसी ने अपने आराध्य का कही भी उन्मुक्त सौन्दर्य वर्णन नहीं किया है। शिव पार्वती के संयोग वर्णन में इन्होंने अपनी इस मर्यादित विवशता को प्रगट भी कर दिया है–

जगत मातु पितु शंभु भवानी।
तेहिं सिंगारून कहऊँ वखानी।।''[15]

इस विवशता को प्रगट करते हुए भी उन्होंने इनके संयोग श्रृंगार का वर्णन किया है–

करहि विविध विधि भोग विलासा
गनन्ह समेत वसहिं कैलाशा।
हर गिरजा विहार नित नयऊ
एहिविधि विपुल काल चलि गयउ। ''[16]

इसका अर्थ यह नहीं कि तुलसी ने संयोग श्रृंगार का चित्रण नहीं किया है। यहाँ नित नयऊ शब्द ही श्रृंगार सौन्दर्य की पूर्ण परिभाषा को प्रगट कर देता है।

पुष्प–वाटिका प्रसंग में संयोग श्रृंगार का रमणीय चित्रण करते हुए तुलसी ने श्रषंार का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है सीता और राम के प्रथम मिलन का आरंभ यही होता है। संयोग श्रृंगार के अंतर्गत आलंबन की शोभा का वर्णन अनिवार्य रूप से होता है। तुलसी का मन नख–शिख वर्णन में नहीं रमता पर राम और सीता के रूप सौन्दर्य और माधुर्य का वर्णन वे अत्यंत तन्मयता से करते है –

जनु विरंचि सब निज निपुनाई
विरचि विस्व कह प्रगटि देखाई।
सुन्दरता कँहे सुन्दर करई
छविगृह दीप शिखा जनु वरई।।''[17]

पुष्पवाटिका में एक दूसरे को देखते है लता–ओट से राम का प्रगट होना और फिर राम और सीता दोनों का आमने–सामने मिलना इसका कितना सुन्दर श्रृंगारिक चित्र तुलसी ने खींचा है –

अस कहि फिरि चितए तेहि औरा
सिचमुख ससि भए नयन चकोर।।
भए विलोचन चारू अचंचल
मनहूँ सकुचि निमितजे दिगंचल।।''[18]

पूर्वराग का इतना सुन्दर चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है, दोनों की विहवलता भी एक जैसी है। राम को देखिए –

थके नयन रघुपात छवि देखे।
पलकन हूँ परिहरिहि निमेपे।।
अधिक सनेह देह भई भोरी। और दूसरी तरफ
लोचन मग रामहि उर आनी
दीन्हे पलक कपाट सयानी।।''[19]

राम और सीता का एक दूसरे को देखना एक सात्विक तथा पवित्र प्रेम है। यही प्रेम सीता में देखा जा सकता है –

प्रयुहि चितई पुनि चितई महि राजत लोचन लोल

खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधु मंडल डोल।।''[20]

प्रोफेसर लल्लन राय इस पर विचार करते हुए कहते है कि यह रूपाकर्षण जनित भाव है जो सीता के हष्दय पर अपना आसन जमा लेता है तथा धीरे–धीरे उसे ठीक बनाता है।''[21]

गीतावली में बसंत ऋतु तथा हिंडोल वर्णन एवं विवाह के समय राम सीता की जोड़ी की सुंदरता का हृदयग्राही चित्रण हुआ है–

दूलह राम सीय दुलही री
वन दामिनी–वर वरनु हरण मन सुन्दरता नख शिख निवही री।''[22]

विवाह के अवसर पर सीता राम को आंख मारकर निहारने में लगी है। सीता अपने हाथ के मणि–आभूषण में राम की छवि एकटक निहार रही है। धूत क्रीड़ा में वे पाशा इसलिए नहीं फेंक पा रही है क्योंकि हाथ हिल जाने से राम का प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई देगा –

निज पानि महुँ देखियतु मूरति सुरूप निधान की
चालति न भुजवल्ली विलोकति विरह बस जानकी।''[23]

यही रस सौन्दर्य कवितावली में भी देखा जा सकता है –

राम को रूप निहारति जानकि कंगन के नग की परछाई।
याते सवै सुधिभूलिगई पल टेकि रही पल यरत नाहीं।''[24]

इसी तरह वन गमन प्रसंग में जव ग्राम–वधूटियाँ सीता से पूछती है–

'साँवरे से सखि रावरे को है!' सीता का कटाक्ष पूर्वक देखने तथा अपने मन के भाव को प्रदर्शित करने में संयोग श्रृंगार का मनोरम दृश्य उपस्थित हुआ है

बहुरि वदन विधु अंचल ढांकी।
पिय तन चितई भौह करि बांकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नैननि।
निज पति कहेऊ तिन्हहिं सिय सैननि।।''[25]

कवितावली में यही भाव देखिए–

'' तिरिछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाई कछु मुस्काई चली।''[26]

संयोग के साथ–साथ वियोग का भी उत्कृष्ट वर्णन तुलसीदास के काव्य में मिलता है। वरवै रामायण में राम के वियोग को अत्यंत सधे हुए रूप में तुलसी ने रखा है –

सीतलता शशि की रही सब जग छाई।
अग्नि ताप है तन कह संचरे आई।।''[27]

गीतावली में सुग्रीव द्वारा सीता के वस्त्राभूषण राम को दिखाये जाने पर राम की व्यथा द्विगुनित हो जाती है

भूषण वसन विलोकत तियके
प्रेम विवश मन कंप पुलक तनु नीरज नयन भरे पिय के।''[28]

यही वियोग मानस में देखिये –

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी।
तुम्ह देखी सीता मृगनयनी।।''[29]

विप्रलंभ का चित्र अशोक वाटिका के सीता हनुमान संवाद में भी देखा जा सकता है–

कवहूँ कवि रघव आवहिंगे।
मेरे नयन चकोर प्रीति वह राकाशशि मुख दिखरावहिगै।''[30]

हनुमान लंका से लौटकर राम को सीता की विरह दशा को बताते है–

रघुकुल तिलक वियोग तिहारे
मैं देखी तस जाई जानकी मनहू विरह मूरति मन को।
रसना रटति नाम कर थिर चिर रहे निज पद कमल तिहारे।

इसके बाद राम की विह्वलता देखिए

कपि के सुनि कल कोमल वैन
प्रेम पुलकि सबगात शिथिल भए सलिल सरसी रूह नैन।।''[31]

रामचरित मानस में –

सुनि सीता दुख प्रभु दुख अपना।
भरि आये जल सजिव नैना।।''[32]

इसके अतिरिक्त तुलसी की रचनाओं में ऐसे अनेक स्थल है जहाँ श्रृंगार अपने पूर्ण मर्यादित सौन्दर्य के साथ संयोग एवं वियोग दानों रूपों में उपस्थित है।

संस्कृत साहित्य में जो स्थान महाकवि कालिदास का है वो स्थान हिन्दी महाकवि तुलसीदास का यदि कालिदास के काव्य का अंगीरस श्रृंगार है तो तुलसी का अंगीरस भी श्रृंगार (भगवद् विषयक इति) ही है। कालिदास के यहां श्रृंगार का सौन्दर्य उद्यान रूप में आया है परंतु तुलसीदास के यहाँ यह पूर्णरूपेण मर्यादा से बंधा हुआ है। कालिदास श्रृंगार के दोनों पक्षों का पूर्ण चित्रण अपने काव्य में करते है। इनके श्रृंगार वर्णन में खासकर रघुवंश में श्रृंगार लोक मर्यादाओं को पार कर गया है तथा 'कुमार–संभवम्' में पहले शिव पार्वती को 'जगतः पितरौ वंदे पार्वती परमेश्वरः' कहने के बावजूद उनका संयोग श्रृंगार चित्रण मर्यादा की सीमाओं को लांघ गया है। कालिदास की समस्त कृतियों में नारी शरीर की सुदरता का ही चित्रण पूर्ण मांसलता के साथ मिलता है उसमें ह्रदय के आत्मिक स्थलों कासगीत नहीं है। हम कह सकते है कि कालिदास के कृतियों पर वात्स्यायन के कामसूत्र का प्रभाव है इस बात की पुष्टि उनके श्रृंगार वर्णन से होती है।

तुलसी का आर्विभाव जिस युग में हुआ उसमें श्रृंगार मर्यादित रूप में आया है। तुलसी मूलतः श्रृंगार के रति भाव अर्थात भक्ति के कवि है। मर्यादित श्रृंगार का वर्णन तो तुलसी में है परंतु रति भंग की स्थिति कहीं नहीं दिखाई पड़ती है। राम और सीता के पूर्वाराग के जैसा वर्णन तुलसी ने किया है अन्यत्र दुर्लभ है।

दोनों का श्रृंगार वर्णन रसत्व के उत्कृष्ट कोटि तक पहुँचा है। यदि अभिज्ञान शकुंतलम में दुष्यंत और शकुंतला के प्रथम मिलन को देखें और तुलसी के राम सीता के पुष्पवाटिका प्रसंग को देखें तो हम पाते है कि दोनों में काफी समानता है। दुष्यंत शकुंतला को देखकर उसकी ओर आकृष्ट होता है तथा शकुंतला भी राजा के सौन्दर्य को छिप–छिप कर देखती है। दुष्यंत कहता है कहीं ये हम पर वैसे ही रीझ गई है जैसे हम इस पर रीझे है लगता है हमारे मनोरथों को फल देने के दिन आ गए है। यद्यपि वह स्वयं मुख से बातचीत नहीं करती है फिर भी जब बोलने लगता हूँ तो कान लगाकर मेरी बातें सुनती है यद्यपि मेरे सामने मुंह करके नहीं बैठती फिर भी इसकी आंखे मुझ पर लगी रहती है हाथी के उपद्रव से आक्रांत भागते हुए उसके पैरों में कुछ चुभ जाता है और उसे निकालने के बहाने वह चुपके–चुपके राजा को निहारती है। इसी प्रकार पुष्प वाटिका में राम सीता के प्रथम मिलन का दृश्य देखें– ''

प्रभुहि चितई पुनि चितई महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिंज भीन जुग जनु विधुमंडल डोल।।''[33]

यहाँ मर्यादा कालिदास और तुलसी दोनों के काव्यों में दिखाई पड़ती है परंतु कालिदास आगे बढ़कर पुनः शारीरिक सौन्दर्य पर केन्द्रित हो जाते है परंतु तुलसी में सात्विकता बरकरार रहती है।

श्रृंगार वियोग के बिना पूरा नहीं होता यद्यपि कालिदास संयोग और वियोग दोनों पक्षों पर लेखनी चलाती है परंतु वियोग में उनकी वृति कम रही है तथापि मेघदूतका विरह वर्णन और इन्दुमती का वियोग व्याकुलता की सीमा को पारकर गया है मालविकाग्निमित्र नाटक में राजा अग्निमित्र प्रिया के वियोग में कामदेव को कोसते हुए अपना विरह उड़ेल देता है पर दोनों की तुलना में कालिदास का संयोग पक्ष अधिक सौन्दर्यमय है।

तुलसी का विरह प्रसंग अत्यंत मार्मिक है तथा सीता हरण के बाद राम की बेचैनी, हनुमान द्वारा राम को सीता का संदेश, राम की व्यथा लक्ष्मण की शक्ति लगनावनगमन आदि प्रसंगों में विरह की तीव्रता का जैसा उन्मेष तुलसी के काव्य में मिलता है वह हमारे मर्मस्थल को छू जाती है तुलसी का विरह सिर्फ राम सीता का विरह है और वह हमें अलौलिककता की ओर ले जाती है। यक्ष का विरह एक सीमित अवधि का विरह है, राम–सीता का विरह की अवधि निश्चित नहीं है अतः तुलसी के विरह में तीव्रता है। शकुंतला का विरह प्रिय के चिह्न को देखते ही समाप्त हो जाता है परंतु राम का वियोग बिना युद्ध और पुरूषार्थ के पूरा नहीं होता।

इस प्रकार हम देखते है कि श्रृंगार के सौन्दर्य चित्रण में दोनों कवियों लेखनी काफी रमी है। जहाँ कालिदास संयोग की मांसलता और दैहिक सौन्दर्य की सृष्टि मे बेजोड़ हैं वहीं तुलसी श्रृंगार के मर्यादित चित्रण में अपना सानी नहीं रखते। दोनों में काफी समानताओं के साथ–साथ दोनों की श्रृंगार दृष्टि है और हम कह भिन्नतर सकते है कि कालिदास का श्रृंगार वासनात्मकता से जीवन की पूर्णता की ओर जाता है पर तुलसी के यहां श्रृंगार राम सीता के माध्यम से हमें कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा देती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. नदिकेश्वर– *काव्य की मांसा–* पृष्ठ 4
2. भारत – *नाट्यशास्त्र कारिका–* 6
3. मम्मट– *काव्यप्रकाश* 4 / 37 / 68
4. डॉ. मधु सक्सेना– *महाकवि कालिदास और अभिज्ञान शकुंतलम्–* पृष्ठ 107
5. डॉ. मधु सक्सेना– *महाकवि कालिदास और अभिज्ञान शकुंतलम्–* पृष्ठ 109
6. कालिदास– *अभिज्ञान शकुंतलम्* 7–24, 7–21
7. कालिदास– *अभिज्ञान शकुंतलम्* प्रथम अंक श्लोक– 20
8. कालिदास– *अभिज्ञान शकुंतलम्* सप्तम अंक श्लोक– 24
9. कालिदास–*मालविकाग्निमित्र–* 4–15
10. कालिदास–*कुमार संभवम्–* 7–22
11. कालिदास– *रघुवंश–* 7–47
12. कालिदास– *रघुवंश–* 19 / 32
13. कालिदास *विक्रयोर्वक्षीयम* द्वितीय अंक श्लोक– 20
14. कालिदास– *मेघदूतम् उत्तरमेध* श्लोक– 53
15. तुलसीदास– *रामचरित मानस–* 102 / 4
16. तुलसीदास– *रामचरित मानस–* 102 / 06
17. तुलसीदास– *रामचरित मानस* बालकांड– 229 / 8
18. तुलसीदास– *रामचरित मानस* बालकांड– 229 / 4
19. तुलसीदास– *रामचरित मानस* बालकांड– 231 / 06
20. तुलसीदास– *रामचरित मानस* बालकांड– 258
21. डॉ. लल्लन राय– *तुलसी की साहित्य साधना–* पृष्ठ 84
22. तुलसी गीतावली–
23. मानस बालकांड– 326 छंद– 3
24. कवितावली बालकांड– 17
25. मानस अयोध्याकांड– 116–106
26. कवितावली अयोध्याकांड– 22
27. उदयमान सिंह– मानस मुक्तावली– पष्ष्ठ 99
28. गीतावली– किष्किंधाकांड– 01
29. मानस– अरण्यकांड– 29 (ख) 10
30. गीतावली–किष्किंधाकांड– 01
31. गीतावली– सुन्दरकांड– 21
32. मानस– सुन्दरकांड– 31 / 1
33. रामचरित मानय बालकांड दोहा क्रं.– 259